इकाई 9 उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक-धार्मिक आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सुधारों की पद्धति और विस्तार क्षेत्र

9.2.1 आंतरिक सुधार

9.2.2 कानून द्वारा सुधार

9.2.3 प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार

9.2.4 सामाजिक कार्यों के माध्यम से सुधार

9.3 मुख्य प्रेरणादायक विचार

9.3.1 तर्कवाद

9.3.2 विश्व व्यापकतावाद

9.4 प्रमुख सुधार आंदोलन

9.4.1 राममोहन राय के विचार

9.4.2 देवेन्द्रनाथ और केशवचन्द्र

9.4.3 विद्यासागर और विवेकानन्द

9.4.4 पश्चिम भारत में सुधार

9.4.5 उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

9.4.6 आर्य समाज

9.4.7 सैय्यद अहमद खान

9.4.8 विरेशलिंगम और दक्षिण भारत में सुधार

9.5 सुधार आंदोलनों का महत्व

9.6 कमजोरियाँ एवं सीमाएँ

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- यह जानेंगे कि भारत में ये सुधार क्यों और कैसे शुरू हुए;
- यह समझेंगे कि इन सुधारों के प्रमुख नेतृत्वकर्ता कौन थे और भारतीय समाज की प्रकृति के बारे में उनके क्या विचार थे; और
- इन सुधारों के तरीकों और विस्तार क्षेत्र को समझते हुए उनकी कमियों पर रोशनी डाल सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के विभिन्न भागों में अनेकों सुधार-आंदोलन हुए। ये सुधार-आंदोलन भारतीय समाज को आधुनिक विचारों के अनुरूप पुनर्गठन की दृष्टि से हुए। यह

इकाई उन सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का सामान्य व समीक्षात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के साथ ही उन आंदोलनों के महत्व पर भी प्रकाश डालने की कोशिश करती है।

अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा भारत पर आधिपत्य ने, भारतीय सामाजिक संस्थाओं की कुछ गंभीर कमजोरियों व खामियों को उभार कर सामने रख दिया। परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तियों और आंदोलनों ने सामाजिक सुधार व पुनरुत्थान की दृष्टि से सामाजिक और धार्मिक परंपराओं में परिवर्तन लाना शुरू किया। चर्चा के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वह कौन-सी शक्ति थी जिसने भारत में जागरण की लहर को जन्म दिया। क्या यह पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप हुआ? या यह केवल औपनिवेशिक हस्तक्षेप का जवाब भर था। हालांकि ये दोनों प्रश्न अंतर्संबंधित हैं, किंतु भली-भाँति समझने के लिए दोनों को अलग-अलग करना ही अच्छा होगा। इसका एक अन्य आयाम भारतीय समाज में आ रहे उन बदलावों से जुड़ा है जिसके फलस्वरूप नए वर्गों का उदय हो रहा था। इस परिप्रेक्ष्य से सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों को औपनिवेशिक भारत के नए उभरते मध्यम-वर्ग की सामाजिक महत्वाकांक्षा की अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज में हुई पुनर्जागरण की प्रक्रिया पर पाश्चात्य प्रभाव के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। फिर भी यदि हम सुधार की इस पूरी प्रक्रिया को औपनिवेशिक कृपा-मात्र मान लें और अपने आपको सिर्फ इसके सकारात्मक पहलुओं की ओर देखने तक ही सीमित रखें तो हम इस घटना के जटिल चरित्र के प्रति न्याय नहीं कर पायेंगे।

9.2 सुधारों की पद्धति और विस्तार क्षेत्र

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार-आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन नहीं थे बल्कि वे सामाजिक-धार्मिक आंदोलन थे। बंगाल के राममोहन राय, महाराष्ट्र के गोपाल हरि देशमुख (लोकहितवादी) और आंध्र के विरेशलिंगम् जैसे सुधारकों ने धार्मिक सुधारों की वकालत ''राजनैतिक फायदों और सामाजिक सुख'' के लिए की थी। इन आंदोलनों और उनके नेताओं के सुधार परिप्रेक्ष्य की विशेषता उनकी इस मान्यता में थी कि धार्मिक और सामाजिक समस्याओं में अंतर्संबंध हैं। उन्होंने धार्मिक विचारों के प्रयोग द्वारा सामाजिक संस्थानों और उनकी परंपराओं में बदलाव लाने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, केशवचंद्र सेन ने ''देवत्व की एकता और मानव मात्र में भाई चारे'' की व्याख्या समाज से जाति भेद मिटाने के लिए की थीं। सुधार-आंदोलनों की सीमा के अंतर्गत आने वाली प्रमुख समस्याएँ निम्न थीं:

- नारी मुक्ति जिसमें सती-प्रथा, शिशु-हत्या, विधवा तथा बाल-विवाह इत्यादि समस्याओं को उठाया गया;
- जातिवाद और छुआछूत;
- समाज के ज्ञानोदय हेतु शिक्षा।

धार्मिक क्षेत्र के मुख्य विषय थे:

- मूर्तिपूजा
- बहुदेववाद
- धार्मिक अंधविश्वास; और
- पंडितों द्वारा शोषण

सामाजिक-धार्मिक परंपराओं में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया गया जिनमें से चार मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं।

9.2.1 आंतरिक सुधार

आंतरिक सुधार-प्रणाली की शुरुआत राममोहन राय द्वारा की गयी थी और उन्नीसवीं शताब्दी में इसका प्रयोग हुआ। इस प्रणाली के प्रचारकों का यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समाज के अंदर से ही हो।

परिणामस्वरूप इनके प्रयास लोगों के बीच जागरूकता की भावना पैदा करने पर केंद्रित थे। यह प्रयास उन्होंने किताबें छापकर, विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर बहस व विवाद का आयोजन इत्यादि करके किया। राममोहन राय का सती-प्रथा के खिलाफ प्रचार, विद्यासागर के विधवा-विवाह पर लिखे इश्तहार तथा बी. एन. मालाबारी के शादी-विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के प्रयास इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

9.2.2 कानून द्वारा सुधार

दूसरी प्रवृत्ति कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आधारित थी। इस प्रणाली की वकालत करने वाले – बंगाल के केशवचंद्र सेन, महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे तथा आंध्र प्रदेश के विरेशलिंगम् का मानना था कि सुधार के प्रयास वास्तव में तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकते जब तक उन्हें राज्य का सहयोग प्राप्त नहीं हो। इसीलिए उन्होंने सरकार से विधवा-विवाह, कानूनी-विवाह (सिविल मैरिज) तथा अन्य विवाहों की न्यूनतम आयु बढ़ाने जैसे सुधारों को कानूनी समर्थन देने की माँग की। हालांकि वे यह समझने में भूल कर बैठे कि ब्रिटिश सरकार की सामाजिक सुधारों में रुचि केवल अपने संकीर्ण राजनैतिक व आर्थिक स्वार्थों के कारण थी और वे तभी हस्तक्षेप करते जब इन सुधारों से उनका स्वार्थ अप्रभावित रहता। साथ ही वे यह समझने में भी गलती कर बैठे कि बदलाव के लिए हथियार के रूप में कानून की भूमिका औपनिवेशिक समाज में ही सीमित थी क्योंकि इसे जनता की मान्यता प्राप्त नहीं थी।

9.2.3 प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार

तीसरी प्रवृत्ति की कोशिश विशिष्ट विरोधी-गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थीं। यह प्रवृत्ति ''डेरोजिओ'' या ''यंग बंगाल'' तक ही सीमित थी जो सुधार-आंदोलन के बीच क्रांतिकारी धारा का नेतृत्व करती थी। इस समूह के सदस्य, जिनमें से प्रमुखतः दक्षिनारंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष तथा कृष्ण मोहन बनर्जी ने परंपराओं का बहिष्कार किया और समाज की मान्यता प्राप्त मानदंडों के खिलाफ विद्रोह किया। वे ''पश्चिम के नए उठते विचारों'' की धारा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वाली क्रांतिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया। रामगोपाल घोष ने इस समूह की क्रांतिकारिता को अभिव्यक्त करते हुए घोषणा की – ''वह जो तर्क नहीं करेगा धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, बेवकूफ है और जो नहीं करता, गुलाम है''। इन्होंने जिस प्रणाली को अपनाया उसकी मुख्य कमजोरी यह थी कि वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपरा को आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाई। अतः बंगाल में उभरते नए मध्यम वर्ग ने इसे परंपरा के विरुद्ध पाया और स्वीकार नहीं किया।

9.2.4 सामाजिक कार्यों के माध्यम से सुधार

चौथी प्रवृत्ति सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार की थी जैसा कि ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन की गतिविधियों से स्पष्ट है। उन लोगों को बिना सहायक सामाजिक कार्य के विरुद्ध बुद्धिजीवी प्रयासों की सीमित सीमा का स्पष्ट ज्ञान था। उदाहरण के लिए, विद्यासागर विधवा-विवाह की वकालत सिर्फ प्रवर्चनों और किताबों के प्रकाशन द्वारा करके ही खुश नहीं थे। शायद आधुनिक युग में भारत ने उनके रूप में सबसे महान मानवतावादी को जन्म दिया, जिसने अपने को विधवा-विवाह की समस्याओं से जोड़ लिया और अपनी पूरी जिन्दगी, शक्ति और धन इसी कार्य पर लगा दिया। इन सबके बावजूद वह सिर्फ कुछ एक विधवा-विवाह ही करवा पाए। विद्यासागर का सार्थक रूप से कुछ न प्राप्त कर पाना ही इस बात का द्योतक है कि औपनिवेशिक भारत में सामाजिक सुधारों के प्रभाव की अपनी एक सीमा थी। आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन ने भी सामाजिक कार्य द्वारा सुधार व पुनर्जागरण के विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। उनकी सीमा उनकी खुद की वह सीमित समझ थी कि सामाजिक और बौद्धिक स्तरीय सुधार समाज के संपूर्ण चरित्र व संरचना के साथ इस कदर जुड़े हैं कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। मौजूदा व्यवस्था की संकीर्णता ही उन सीमाओं को दर्शाती है, जिन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कोई भी प्रयास लांघ नहीं पाया है। दूसरे सुधार-आंदोलनों

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 103 24-03-2021 11:47:21

की तुलना में इनकी निर्भरता औपनिवेशिक सरकार के हस्तक्षेप पर कम और सामाजिक कार्य को मत के रूप में विकसित करने पर ज्यादा रही।

9.3 मुख्य प्रेरणादायक विचार

जिन दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं ने आंदोलनों और उनके नेताओं को प्रभावित किया, वह हैं– तर्कवाद और विश्व-व्यापकतावाद।

9.3.1 तर्कवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारों का सामाजिक-धार्मिक यथार्थ के बुद्धिवादी आलोचकों ने सामान्य चित्रण किया है। शुरुआती ब्रह्म सुधारकों और ''यंग बंगाल'' के सदस्यों ने सामाजिक-धार्मिक समस्याओं के प्रति अत्यधिक विवेकपूर्ण रवैया अपनाया था। अक्षय कुमार दत्त, समझौता न करने वाले बुद्धिवादी, ने तर्क दिया कि प्राकृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति को मात्र इसकी बनावट व मशीनी प्रक्रिया के स्तर पर अपनी बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है तथा इसकी समीक्षा की जा सकती है। विश्वास को विवेक से बदलने का प्रयास किया गया और सामाजिक-धार्मिक परंपराओं को उनकी सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से आँका गया। बुद्धिवादी परिप्रेक्ष्य से ब्रह्म समाज में वेदों की अमोघता का खण्डन हुआ तथा अलीगढ़ में सर सैयद अहमद खान द्वारा स्थापित आंदोलन ने इस्लाम की शिक्षाओं को नए युग की जरूरतों व आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने पर जोर दिया। सर सैयद अहमद खान ने धार्मिक सिद्धांतों को निर्विकार मानते हुए सामाजिक विकास में धर्म की भूमिका पर जोर देते हुए कहा कि यदि धर्म ने समय के साथ कदम नहीं मिलाया और समाज की माँगों को पूरा नहीं किया तो यह प्रभावहीन हो जाएगा, जैसा कि इस्लाम के साथ भारत में हुआ है।

यद्यपि सुधारकों ने धर्मग्रंथों की सम्मति ली (जैसा कि राममोहन के सती-प्रथा की समाप्ति के लिए और विद्यासागर के विधवा-विवाह के समर्थन में दिए गए तर्कों से स्पष्ट होता है) किंतु, सामाजिक सुधार हमेशा धार्मिक भावनाओं के अनुकूल नहीं थे। उस समय की व्याप्त सामाजिक परंपराओं को बदलने के लिए रखे गए दृष्टिकोणों में एक विवेकपूर्ण और निरपेक्ष दृष्टिकोण स्पष्टतः परिलक्षित था। विधवा-विवाह की वकालत तथा बहुपत्नी-प्रथा व बाल-विवाह का विरोध करते समय अक्षय कुमार को किसी धार्मिक विधान की खोज या भूतकाल में उनके प्रचलन की जानकारी हासिल करने में कोई अभिरुचि नहीं थी। उनके तर्क मुख्यतः समाज में होने वाले उनके प्रत्यक्ष प्रभावों पर ही आधारित थे। धर्मग्रंथों पर निर्भर होने की बजाय उन्होंने बाल-विवाह का विरोध करने के लिए डॉक्टरी राय का हवाला दिया।

अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा महाराष्ट्र में धर्म पर निर्भरता कम थी। गोपाल हरि देशमुख के लिए सामाजिक सुधारों का धार्मिक विधान सम्मत होना या न होना महत्वहीन था। यदि धर्म ने सुधारों की अनुमति नहीं दी, तो उनका मानना था कि धर्म को ही बदल दो। क्योंकि जो धर्मग्रंथों में लिखा है जरूरी नहीं कि वह समकालीन प्रसंगों के अनुकूल हो।

9.3.2 विश्व व्यापकतावाद

उन्नीसवीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण विचार था– विश्व व्यापकतावाद जिसका ईश्वर की एकता में विश्वास था और जो सब धर्मों के आवश्यक रूप से एक होने पर जोर देता था। राममोहन राय ने विभिन्न धर्मों को अखिल आस्तिकवाद का राष्ट्रीय अवतार माना और शुरू में ब्रह्म समाज को विश्वधर्म चर्च का दर्जा दिया था। सैयद अहमद खान के विचारों में भी लगभग वही गूंज थीः सभी पैगंबरों का एक ही संदेश (विश्वास) था और हर देश और राष्ट्र के अलग-अलग पैगंबर थे। इस मत ने केशवचंद्र सेन के विचारों में अधिक स्पष्टता पाई, जिन्होंने ब्रह्म समाज से हटकर सभी बड़े धर्मों की धाराओं को एक ही सूत्र ''नव विधान'' में बाँधने की कोशिश की तथा उसमें सभी प्रमुख धर्मों के विचारों का संश्लेषण करने का प्रयास किया। विश्व व्यापकतावाद मत पूरी तरह दर्शन का विषय नहीं था। इसने राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण को तब तक काफी प्रभावित किया जब तक धार्मिक उदारतावाद ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी जड़ें नहीं जमा लीं। प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी भी, जिन्हें हिंदू धर्म पर उनकी समझ से जोड़ा जाता है,

सार्वभौमिक धर्म को एक व्यक्ति की दूसरे के ऊपर श्रेष्ठता को निर्धारित करने की कसौटी मानते थे। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक पहचान लोगों की सामाजिक दृष्टिकोण को प्रभावित नहीं करती थी बल्कि यह काफी ज्यादा ही प्रभावित करती थी। सुधारकों के विश्व व्यापकतावाद पर जोर देने का उद्‌देश्य इस विशिष्ट खिचाव को ही शुरू करना था। हालांकि औपनिवेशिक संस्कृति तथा विचारधारा की चुनौती में विश्व व्यापकतावाद एक व्याप्त धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्ति को बढ़ावा देने की बजाय धार्मिक विशिष्टता में गुम हो गया।

बोध प्रश्न-1

1) निम्नलिखित कथन को पढ़ें और उन पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ।

   क) उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार-आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आंदोलन थे।

   ख) एक ही समय में अनेक सुधार-आंदोलन देश के विभिन्न भागों में उभरे।

   ग) इन सुधार-आंदोलनों का सूत्रपात बंगाल में हुआ।

   घ) सुधार-आंदोलन में ''यंग बंगाल'' ने क्रांतिकारी धारा का प्रतिनिधित्व किया।

2) तर्कवाद और विश्व-व्यापकतावाद पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

....

....

....

9.4 प्रमुख सुधार आंदोलन

सुधार की सबसे पहली अभिव्यक्ति बंगाल में राममोहन राय द्वारा शुरू हुई। उन्होंने 1814 में आत्मीय सभा की स्थापना की जो उनके द्वारा 1829 में संगठित ब्रह्म समाज की अग्रगामी थी। सुधार की भावना शीघ्र ही देश के अन्य भागों में भी दिखाई देने लगी। महाराष्ट्र की परमहंस मंडली और प्रार्थना समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में आर्य समाज, हिंदू समाज के कुछ मुख्य आंदोलन थे। इस दौरान के कई अन्य धार्मिक व जातिगत आंदोलन जैसे यू. पी. में कायस्थ सभा तथा पंजाब में सरीन सभा थे। पिछड़ी जातियों में भी इन सुधारों ने जड़ पकड़ ली जैसे, महाराष्ट्र में सत्य-शोधक समाज और केरल में नारायण धर्म परिपालन सभा। अहमदिया और अलीगढ़ आंदोलन, सिंह सभा तथा रहनुमाई मजदेआसन सभा आदि ने क्रमशः मुसलमानों, सिखों तथा पारसियों में सुधार की भावना का प्रतिनिधित्व किया।

9.4.1 राममोहन राय के विचार

राजा राममोहन राय को समुचित ही आधुनिक भारत का जनक कहा गया है। वे एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे, उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के लगभग सारे पहलुओं को उठाया और भारतीय राष्ट्र की पुनर्रचना के लिए संघर्ष किया। उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और अपने समय के एक प्रकांड पंडित के रूप में प्रसिद्ध हुए।

उनकी पहली दार्शनिक कृति **तुहफत-उल-मुवाहिदीन** 1905 में प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने 'विवेक' तथा 'सामाजिक सुखलाभ' संबंधित विचारों की रोशनी में विश्व के मुख्य धर्मों का विश्लेषण किया। उन्होंने धर्म को विवेक से परे मात्र आस्था का विषय मानने से इंकार किया और उससे जुड़े चामत्कारिक मिथकों के पर्दाफाश का प्रयास किया।

1814 में कलकत्ता में बस जाने के बाद राममोहन राय की सुधार-सक्रियता और तेज हुई। उन्होंने **आत्मीय सभा** का गठन किया और धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सतत संघर्ष चलाया। उन्होंने मूर्ति पूजा की भर्त्सना की और एकेश्वरवाद का पक्ष लिया। स्वदेशी ग्रंथों की वास्तविक शिक्षाओं के बारे में जनसमुदाय को अनभिज्ञ रखकर धार्मिक बुराइयों को बनाए रखने के लिए उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितों को दोषी ठहराया। जनशिक्षा के

उद्देश्य से उन्होंने कुछेक ग्रंथों का बंगाली अनुवाद प्रकाशित किया और एकेश्वरवाद के पक्ष में धुआंधार लेखन किया। स्थानीय भाषा में उनके अनुवाद और लेखन में बंगला भाषा के विकास को प्रोत्साहन मिला।

राममोहन राय अपने समूचे सक्रियता-काल में 'तर्कवादी' बने रहे। ''तुहफत'' में उनके ''तर्कवाद'' का पूर्ण परिपक्व रूप देखा जा सकता है। उनकी परिवर्ती रचनाओं में भी यथार्थ की कसौटी के रूप में विवेक को उसका समुचित स्थान मिलता है। यद्यपि बाद में चलकर उन्होंने धर्मग्रंथों का आश्रय लिया, लेकिन ऐसा हिंदू समाज में सुधारों को बढ़ावा देने के लिए ही उन्होंने किया।

1828 में उन्होंने एक नए समाज **ब्रह्म सभा** की स्थापना की जो बाद में ब्रह्म समाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका प्राथमिक उद्देश्य था हिंदुत्व को उसकी बुराइयों से अलग करना और एकेश्वरवाद का प्रचार-प्रसार। इसमें अन्य धर्मों की श्रेष्ठ शिक्षाएँ भी समाहित की गई। यह मानवतावाद, एकेश्वरवाद और सामाजिक पुनर्सृजन के पोषण के लिए शक्तिशाली मंच बना।

वर्तमान सामाजिक पतनशीलता को लेकर राममोहन अत्यंत दुखी थे। समाज में महिलाओं की दारुण दशा विशेष रूप से उनके सरोकार का विषय बनी। उन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध व्यापक अभियान चलाया। उनके आंदोलनकारी प्रयासों के फलस्वरूप अंततः 1829 में भारत के गवर्नर जनरल **लार्ड विलियम बेंटिंक** ने इस प्रथा के विरुद्ध एक कानून लागू किया। लेकिन विधवा जीवन के लिए जो समाधान उन्होंने सुझाया, वह पुनर्विवाह नहीं बल्कि तपश्चर्या ही था।

उन्होंने बहु-विवाह एवं बाल-विवाह की भर्त्सना की और समाज में महिलाओं के उत्पीड़न एवं उनके निम्न स्तर पर होने का विरोध हुआ। उन्होंने उनकी समस्याओं का मूल कारण सम्पत्ति अधिकारों का अभाव बताया। उनके विचार से, भारतीय समाज को सामाजिक जड़ता से मुक्त करने के लिए महिला शिक्षण एक अन्य प्रभारी माध्यम था।

उन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तन एवं प्रसार के लिए काम किया, जो देश में आधुनिक विचारों के प्रमुख साधन की भूमिका निभा सकती थी। इसके संवर्धन के लिए उन्होंने डेविड हेयर को प्रोत्साहन एवं समर्थन दिया, जिसने कलकत्ता के अनेक गणमान्य व्यक्तियों के साथ मिलकर प्रसिद्ध हिंदू कालेज की स्थापना 1817 में की। उन्होंने अपने ही खर्चे से कलकत्ता में एक अंग्रेजी स्कूल भी चलाया। 1825 में उन्होंने वेदांत कालेज की स्थापना की, जिसमें भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के अध्ययनों की सुविधा थी।

राममोहन ने भारत में पाश्चात्य वैचारिक ज्ञान, गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन, शरीर क्रिया विज्ञान और अन्य उपयोगी विज्ञानों के शिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। पाश्चात्य बौद्धिक विकास के सन्निहित कारणों को वे समझते थे और चाहते थे कि भारत के लोग भी यूरोप की प्रगति के परिणामों से परिचित हों। उनका लक्ष्य था, पूर्व और पश्चिम की सर्वोत्तम विशेषताओं का समन्वय।

राममोहन ने अपने समय की सामाजिक एवं धार्मिक ही नहीं, बल्कि राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं को भी उठाया। उन्होंने सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण, न्यायिक कार्रवाई, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र अलग करने और भारतवासियों तथा यूरोपवासियों के बीच न्यायिक समानता का पक्ष लिया। उन्होंने जमींदारी व्यवस्था के अंतर्गत उत्पीड़क कार्रवाइयों की तीखी आलोचना की।

राममोहन भारत में राष्ट्रवादी चेतना एवं विचारधारा के जनक थे। सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों को लक्षित उनका प्रत्येक प्रयास राष्ट्रनिर्माण को लक्षित था। अपने सुधार प्रस्तावों के माध्यम से वे विविध समुच्चयों में विभाजित भारतीय समाज की एकता स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने विशेष रूप से जाति-व्यवस्था की कठोरता पर प्रहार किया जो उनके विचार से भारतवासियों में फूट का कारण बनी थी। उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि अमानुषिक जाति-व्यवस्था ने एक और जनसमुदाय में असमानता एवं विभाजन को जन्म दिया है, दूसरी ओर उन्हें देशभक्ति की भावनाओं से वंचित किया है।

9.4.2 देवेन्द्रनाथ और केशवचन्द्र

इस बीच सुधार प्रयासों को राममोहन से मिलने वाले उत्प्रेरण का संवेग बहुत कुछ खत्म हो गया था। रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर ने पुनः इसमें जीवन का संचार किया। समाज से स्वतंत्र रूप में राममोहन के आदर्शों को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने 1839 में तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की। भारत में ईसाई धर्म की तेज प्रगति का प्रतिरोध और वेदांत का विकास उनका लक्ष्य था। **तत्वबोधिनी सभा** के अधीन स्थानीय भाषा एवं संस्कृति के विकास पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा। सभी विषयों से संबंधित पुस्तकें बंगला में प्रकाशित की गई। **तत्वबोधिनी प्रेस** की स्थापना के बाद 1843 में विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए संगठन के पत्र, तत्वबोधिनी पत्रिका की शुरुआत की गई। 1843 में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज विचारों को अपनाया और उसी वर्ष उन्होंने **ब्रह्म समाज** का पुनर्गठन किया।

ब्रह्म समाज से जुड़े एक अन्य प्रमुख बौद्धिक व्यक्तित्व थे, केशवचन्द्र सेन। केशव ने नारी-मुक्ति प्रयासों पर बल दिया। देवेन्द्रनाथ द्वारा राष्ट्रीय हिंदू अस्मिता पर बल देने के विपरीत उन्होंने सार्वभौमिक विचारों को पुष्ट किया। अपने बीच सिद्धांतगत विभेदों के बावजूद ब्रह्म समाजियों ने राममोहन के विचारों के प्रचार तथा बंगाल के समाज को बदलने में सामूहिक योगदान किया। उन्होंने धार्मिक मामलों में मठाधीशों की मध्यस्थता की भर्त्सना की और एक ईश्वर की आराधना का पक्ष लिया। उन्होंने विधवा-विवाह, एक-विवाह और महिला शिक्षा का समर्थन किया।

9.4.3 विद्यासागर और विवेकानन्द

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर सामाजिक परिदृश्य पर उभरे। प्रकांड संस्कृत विद्वान के रूप में वे 1851 में संस्कृत कालेज के प्राचार्य बने। उन्होंने संस्कृत कालेज में पाश्चात्य शिक्षा की शुरुआत की और गैर-ब्राह्मण विद्यार्थियों को भी प्रवेश दिया। उन्होंने बंगला भाषा की प्राथमिक पुस्तिका लिखी और बंगला की विशिष्ट आधुनिक गद्य शैली के विकास में योगदान किया। उनका महान योगदान महिला शिक्षा के क्षेत्र में ही था। विधवा-विवाह के विशिष्ट सामाजिक मसले को उन्होंने अपना समूचा जीवन समर्पित कर दिया। विधवाओं के पुनर्विवाह को वैध बनाने हेतु उनके आंदोलन को देश के विभिन्न भागों के प्रबुद्ध समुदायों का समर्थन मिला और अंततः एक तत्संबंधित कानून लागू किया गया। विद्यासागर के संरक्षण में उच्च जातियों के बीच पहला विधवा-विवाह 1856 में संपन्न किया गया। उनके प्रयासों द्वारा 1855 और 1860 के बीच 25 विधवा-विवाहों को विधिवत मान्यता मिली। मूलगामी सामाजिक सुधारों के इतिहास में निश्चय ही यह पहली प्रमुख उपलब्धि थी और राममोहन द्वारा प्रस्तावित तपस्वी विधवा जीवन की तुलना में एक प्रगतिशील कदम था। उन्होंने सामान्य उन्नति के उद्देश्य से महिलाओं की उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। 1849 में कलकत्ता में स्थापित **बेथुन स्कूल** के सचिव के रूप में उन्होंने महिला शिक्षा आंदोलन के नेतृत्व में केन्द्रीय भूमिका निभाई। उन्होंने बाल-विवाह तथा बहु विवाह के विरुद्ध भी प्रचार अभियान चलाया।

समूचे हिंदू समाज को आलोकित कर देने वाले नरेन्द्रनाथ दत्त, जो स्वामी विवेकानन्द के रूप में विख्यात हैं, उन्नीसवीं सदी बंगाल के महान चिंतकों की श्रृंखला में काल-क्रमानुसार अंत में आते हैं। उनके गुरु अथवा आध्यात्मिक अनुदेशक थे, रामकृष्ण परमहंस (1834-1886)। रामकृष्ण ने सार्वभौम धार्मिकता पर बल दिया और धर्म विशेष की श्रेष्ठता के दावों की निंदा की। फिर भी, उनका प्राथमिक सरोकार धार्मिक मोक्षलाभ ही रहा, न कि सामाजिक मुक्ति। उनके सुप्रसिद्ध शिष्य विवेकानंद (1863-1902) ने देश-विदेश में उनके संदेश को लोकप्रिय बनाया। विवेकानंद ने जाति-प्रथा और जनसमुदाय में व्याप्त रूढ़िवादी रीतियों व अंधविश्वासों की भर्त्सना की। 1896 में उन्होंने मानवतावादी व समाज सेवा कार्य चलाने के लिए **रामकृष्ण मिशन** की स्थापना की। मिशन का मुख्य लक्ष्य था, जनसमुदाय के लिए सामाजिक सुविधाएँ जुटाना। देश के विभिन्न भागों में स्कूल, अस्पताल, अनाथालय, पुस्तकालय इत्यादि चलाकर इसने अपने लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास किया।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 107 24-03-2021 11:47:21

9.4.4 पश्चिमी भारत में सुधार

महाराष्ट्र में बौद्धिक विद्रोह की पहली गूंज उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में सुनी गई थी। आंदोलन की पहल तथा नेतृत्व करने वाले शुरुआत के बौद्धिकों में सर्वप्रमुख थे बाल शास्त्री जांबेकर (1812-1846), दादोबा पांडुरंग तारखडकर (1814-1882) और भास्कर पांडुरंग तारखडकर (1816-1847), ''लोकहितवादी'' नाम से सुपरिचित गोपाल हरि देशमुख (1823-1882), और आजीवन अविवाहित रहने वाले विष्णु बाबा ब्रहमचारी नाम से लोकप्रिय विष्णु भीखाजी गोखले (1825-1873)। जांबेकर महाराष्ट्र में बौद्धिक आंदोलन के प्रवर्तक थे। अठारहवीं सदी के चौथे दशक में अपनी अनेक रचनाओं के माध्यम से उन्होंने आंदोलन का आधार बनाया। दादोबा ने 1840 में परमहंस सभा की स्थापना करके इसको सांगठनिक स्वरूप दिया, जो उन्नीसवीं सदी महाराष्ट्र का पहला सामाजिक सुधार संगठन था। भास्कर पांडुरंग ने भारत में औपनिवेशिक शासन के जुझारू राष्ट्रवादी आलोचक के रूप में विशिष्टता प्राप्त की। भारत में अंग्रेजी राज्य के शोषक चरित्र को उजागर करने वाले पहले व्यक्ति वही थे। 1841 में उन्होंने बंबई प्रेसिडेंसी के सबसे पुराने पत्र **बंबई गजट** में आठ खंडों की एक लेखमाला प्रकाशित कराई और औपनिवेशिक प्रभुत्व के लगभग सभी पक्षों का पर्दाफाश किया।

''लोकहितवादी'' की मुख्य भूमिका आंदोलन के क्षेत्र को व्यापक बनाने की थी। 1848-50 में उन्होंने मराठी साप्ताहिक पत्र **प्रभाकर** में अपने प्रसिद्ध **शतपत्रेण** (सौ पत्र) लिखे। यह महाराष्ट्र में आरंभिक बौद्धिक प्रयासों में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ। अपनी **समग्रता** में ये पत्र इतने आयामों को समेटते हैं कि सामाजिक जीवन का शायद ही कोई पहलू अछूता रहता हो।

ब्रह्मचारी जाति भेदभाव के **घोर** विरोधी थे और **मानवजाति** की एकता में आस्था रखते थे। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने अपने लिए एक मुसलमान रसोइया नियुक्त किया था और किसी के भी द्वारा परोसा गया खाना खा लेते थे। इस प्रकार उन्होंने जाति-प्रथा की कट्टरता को खुलेआम चुनौती दी और **समता मूलक** समाज व्यवस्था के लिए सक्रिय रहे।

जबकि बंगाल में आंदोलन की धारा धार्मिक तथा दार्शनिक थी, महाराष्ट्र के संदर्भ में सुधार-प्रयासों के अंतर्गत मुख्यतः सामाजिक मसलों को ही प्रधानता हम देखते हैं। महाराष्ट्र में आरंभिक बौद्धिक आंदोलनकर्ता सूक्ष्म दार्शनिक प्रश्नों से सरोकार रखने वाले धार्मिक चिंतक प्रकृति के नहीं थे। उनका दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक था। उदाहरण के लिए, **परमहंस सभा** का मुख्य उद्देश्य सभी जातिगत भेदभावों के समाप्त करना था। **सभा** की सदस्यता लेने वाले प्रत्येक नए व्यक्ति को ''दीक्षा संस्कार'' की प्रक्रिया से गुजरना होता था और किसी भी प्रकार के जातिगत भेदभाव से दूर रहने का संकल्प करना पड़ता था। उसे एक ईसाई द्वारा सेंकी गई रोटी खानी पड़ती थी और मुसलमान के हाथ से पानी पीना पड़ता था। **सभा** का चरित्र एक **गुप्त सोसाइटी** का था। रूढ़िवादियों के रोष से बचने के लिए इसकी गोष्ठियाँ अत्यंत गोपनीय स्थिति में की जाती थीं। इस प्रकार जाति-प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियों को चुनौती देने का प्रयास इस सभा के थोड़े से सदस्यों तक ही सीमित रहा।

9.4.5 उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

सुधार आंदोलन के सदी के उत्तरार्द्ध में ही अधिक बल मिल पाया। बौद्धिक परिदृश्य पर अनेक **मूर्धन्य** व्यक्तित्व उभरे। उनमें सबसे महत्वपूर्ण थे विष्णु परशुराम शास्त्री पंडित (1827-1876), ज्योतिबा फूले (1827-1890), रामकृष्ण गोपाल भंडारकर (1837-1925), नारायण महादेव परमानंद (1838-1893), महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901), विष्णुशास्त्री चिपलंकुर (1850-1882), के. टी. तैलंग (1850-1893), गणेश वासुदेव जोशी (1851-1911), नारायण गणेश चंद्रावरकर (1855-1923) और गणेश आगरकर (1856-1895)।

विष्णु परशुराम शास्त्री पंडित ने अपने सार्वजनिक जीवन का आरंभ विधवा-विवाह के समर्थन से किया। महिला मुक्ति आंदोलन के क्षेत्र में उनकी अग्रणी भूमिका थी। 1865 में उन्होंने **विधवा-विवाह उत्तेजक मंडल** की स्थापना की और उसका सचिव पद संभाला।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 108 24-03-2021 11:47:21

एक विधवा से 1875 में विवाह करके स्वयं एक उदाहरण प्रस्तुत किया। माली जाति में पैदा हुए ज्योतिबा फूले स्वयं एक दलित समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में उभरे। वे पहले भारतीय थे, जिसने अछूतों के लिए एक विद्यालय की स्थापना 1854 में की। उन्होंने भारतीय महिलाओं की मुक्ति के लक्ष्य को भी **मुखर** किया। 1851 में उन्होंने अपनी पत्नी के साथ पूना में एक बालिका विद्यालय स्थापित किया।

अपनी गहन विद्वता से **भंडारकर** ने ''महर्षि'' की उपाधि प्राप्त की। रूढ़िवादियों के घनघोर विरोध के बावजूद उन्होंने 1891 में अपनी विधवा पुत्री का विवाह कराया। हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षधर गिने-चुने लोगों में से वे एक थे। **''पोलिटिकल रेक्ल्यूस''** (Political recluse) उपनाम से लिखने वाले परमानंद एक महान समाज-सुधारक होने के अलावा अंग्रेजी प्रशासन के रचनात्मक आलोचक थे।

उनके विचार से जातिगत भेदभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा कलंक था। उन्हें इस बात का पूरा बोध था कि धार्मिक सुधार-चेतना को अपनाए बिना सामाजिक-सुधार आंदोलन जनसमुदाय को प्रभावित नहीं कर सकता। उनके निर्देशों के अधीन 1867 में **परमहंस सभा** का पुनर्गठन **प्रार्थना समाज** के रूप में किया गया। अपने जीवन के अंत तक उन्होंने बौद्धिक सामर्थ्य एवं व्यवहार कुशलता के साथ आंदोलन का संचालन किया। **प्रार्थना सभा** ने एकेश्वरवाद की शिक्षा दी और धर्माध्यक्षों के प्रभुत्व तथा जातिगत भेदभाव की निंदा की। तेलुगू समाज सुधारक वीरेशलिंगम के प्रयासों के माध्यम से इस समाज के क्रियाकलापों का प्रसार दक्षिण भारत तक हुआ।

चिपलुंकर ने समाज सुधार को समर्पित मासिक मराठी पत्रिका **निबंधमाला** की शुरुआत 1874 में की। 32 वर्ष की अल्पायु में ही उनका देहावसान हो गया। बंबई में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की शुरुआत करने में तेलंग की केंद्रीय भूमिका थी। उपकुलपति पद प्राप्त करने वाले वे प्रथम भारतीय थे। जोशी ने अपनी मुख्य पहचान राजनीति के क्षेत्र में बनाई। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति की बुद्धिमत्तापूर्ण समीक्षा सामने रखी। फिर भी, वे उन बौद्धिकों के साथ एकमत थे, जो शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभावशाली साधन मानते थे। मूलतः एक दार्शनिक प्रवृत्ति वाले **चंदावरकर** प्रार्थना समाज के अग्रणी कार्यकर्ता थे। **अगरकर** औघड़, रूढ़िभंजक प्रकृति के और समझौता विहीन तर्कवादी थे। परंपरा के अंधानुसरण और भारत के अतीत के मिथ्या महिमा मंडल की उन्होंने अत्यंत तीक्ष्ण भर्त्सना की।

बंबई के अन्य सुधार आंदोलनकर्ता थे नौराजी फुर्दोजी, दादाजी नौरोजी और एस. एस. बंगाली। 1851 में उन्होंने **रहनुमाई मज़दायसन सभा** नाम के धार्मिक संगठन की स्थापना की। इसका उद्देश्य था, पारसी आस्थाओं तथा सामाजिक प्रथाओं का आधुनिकीकरण। महिलाओं की शिक्षा की शुरुआत एवं प्रचार-प्रसार करने, उनको वैधानिक अधिकार दिलवाने और समूचे पारसी समुदाय में उत्तराधिकार व विवाह के लिए एक जैसे कानून बनवाने के लिए इस सभा ने संघर्ष चलाए।

9.4.6 आर्य समाज

उत्तरी भारत में सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलन के संचालक थे, स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883), जिन्होंने 1875 में **आर्य समाज** की स्थापना की। स्वामी दयानंद ने मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, ब्राह्मणों द्वारा पोषित धार्मिक कर्मकांडों और अंधविश्वासों पर प्रहार किया। उन्होंने अंतर्जातीय विवाह और महिला-शिक्षा का पक्ष लिया। लेकिन वेदग्रंथों की ओर उनके झुकाव ने उनकी शिक्षाओं को एक रूढ़िवादी प्रकृति प्रदान की। आर्य समाजियों ने उत्तरी भारत में सामाजिक सुधार लक्ष्यों को बढ़ाने में प्रगतिशील भूमिका निभाई। उन्होंने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कार्य किया, सामाजिक समानता का समर्थन किया और अस्पृश्यता एवं जातिभेद की भर्त्सना की। यद्यपि वे वेदग्रंथों को अपरिहार्य मानते थे, उनके द्वारा समर्थित सुधार आधुनिक विवेकसम्मत चिंतन की उपज थे।

9.4.7 सैय्यद अहमद खान

भारतीय मुसलमानों में सुधार आंदोलन अपेक्षाकृत देर से, अठारहवीं सदी के सातवें दशक में ही उभरे। सैय्यद अहमद खान (1817-1898) ने पतनशील मध्ययुगीन विचारों को छोड़ने

के लिए, तथा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान तथा दृष्टिकोण अपनाने के लिए मुसलमानों से अपील की। उन्होंने बहु-विवाह प्रथा की निंदा की और महिलाओं में पर्दा-प्रथा खत्म करने व शिक्षा के प्रसार का समर्थन किया। सहिष्णुता की शिक्षा देते हुए उन्होंने विवेकसम्मत विचार एवं स्वतंत्र चिंतन के विकास का आह्वान किया। आधुनिक शिक्षा का संवर्धन उनका प्रमुख सरोकर था और इसके लिए उन्होंने आजीवन कार्य किया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने 1875 में अलीगढ़ के मुहम्मद आंग्लो-ओरियंटल कालेज की स्थापना की। इस कालेज के बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का रूप लिया।

वे कुरान को मुसलमानों के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय और विवेक सम्मत धार्मिक ग्रंथ मानते थे। सभी धर्मों के प्रति आदर भाव रखते हुए उन्होंने धर्मोन्माद के विरुद्ध आवाज उठाई। उनके कुछ अनुगामियों ने उभर रहे राष्ट्रीय आंदोलन से अपने को अलग बनाए रखा, यह विश्वास करते हुए कि दोनों समुदाय अपने-अपने अलग रास्तों से विकास कर सकते हैं।

9.4.8 विरेशलिंगम और दक्षिणी भारत में सुधार

दक्षिण भारत में आरंभ के दौर में समाज सुधार आंदोलन के एक प्रमुख व्यक्तित्व थे, कंडुकरि विरेशलिंगम (1848-1919)। कलकत्ता तथा बंबई सुधार आंदोलन में सक्रिय अनेक समकालीन व्यक्तियों से भिन्न विरेशलिंगम एक निर्धन परिवार में जन्में थे। अपने जीवन के अधिकांश समय में उन्होंने स्कूल-शिक्षक पद पर काम किया। निर्बाध लेखन सामर्थ्य से संपन्न उन्होंने तेलुगू भाषा में अनेकानेक प्रबंधों एवं प्रपत्रों की रचना की। इसीलिए उन्हें आधुनिक तेलुगु गद्यसाहित्य का जनक कहा जाता है। विधवा-पुनर्विवाह, नारी शिक्षा, महिला-मुक्ति और सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन जैसे विषयों के प्रति उनके उत्साह ने उन्हें आंध्र के समाज सुधारकों के आगामी पीढ़ी के लिए पितातुल्य बना दिया।

9.5 सुधार आंदोलनों का महत्व

आधुनिक भारत के क्रमिक विकास में उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने समाज को जनतांत्रिक बनाने, घृणित रिवाजों और अंधविश्वासों को दूर करने, ज्ञान के प्रसार और एक विवेकपूर्ण तथा आधुनिक दृष्टिकोण के विकास का समर्थन किया है। मुसलमानों के बीच अलीगढ़ व अहमदिया आंदोलनों ने इन विचारों की मशाल अपने हाथों में थामे रखी। मिर्जा गुलाम अहमद से प्रोत्साहन पाकर अहमदिया आंदोलन ने 1890 में एक निश्चित स्वरूप धारण कर लिया और ''जिहाद'' का विरोध तथा लोगों के बीच भाईचारे व स्वतंत्र पश्चिमी शिक्षा की वकालत की। बहु-विवाह का विरोध कर तथा विधवा-विवाह का समर्थन कर अलीगढ़ आंदोलन ने मुसलमान समाज में एक नया लोकाचार पैदा करने की कोशिश की। इसने कुरान की स्वतंत्र व्याख्या करने तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार का समर्थन किया।

हिंदू समाज के बीच हुए सुधार-आंदोलनों ने अनेक सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार किया। इन आंदोलनों ने बहु-देववाद और मूर्तिपूजा (जो व्यक्ति के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं), दैव-शक्तिवाद तथा धार्मिक प्रधानों की तानाशाही (जो अधिनायकवाद जैसी प्रकृति को दबाती है) की आलोचना की। जाति-प्रथा का विरोध न केवल आदर्श या नैतिकता के आधार पर हुआ, बल्कि इसलिए भी हुआ कि यह समाज में फूट डालने जैसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। ब्रह्म समाज के आरंभिक आंदोलनों में जाति-प्रथा का विरोध केवल सैद्धांतिक आधार पर एक निश्चित स्तर तक ही सीमित होकर रह गया, इसके विपरीत आर्य समाज, प्रार्थना समाज तथा रामकृष्ण मिशन जैसे धार्मिक आंदोलनों ने जाति-प्रथा से समझौता नहीं करके उसकी आलोचना की। ज्योतिबा फूले तथा नारायण गुरु द्वारा शुरू किए गए आंदोलनों से ही पता चलता है कि उन्होंने स्पष्ट रूप से जाति-प्रथा के उन्मूलन की वकालत की थी, नारायण गुरु का नारा थाः

''मानवता के लिए केवल एक भगवान और एक जाति''।

स्त्रियों की दशा में सुधार की इच्छा का आधार केवल विशुद्ध मानवीय इच्छा न होकर समाज में विकास लाने की खोज का ही एक रूप था। केशवचंद्र सेन ने अपना मत रखा

कि: ''पृथ्वी पर उस किसी भी देश ने सभ्यता की दौड़ में कभी अपेक्षित विकास नहीं किया, जहाँ की स्त्री-जाति का जीवन अंधकारमय हो।''

9.6 कमजोरियाँ एवं सीमाएँ

हालांकि उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों का उद्देश्य भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के सामाजिक, शैक्षिक व नैतिक स्तर को ऊपर उठाने का था, किंतु यह उद्देश्य कई कमजोरियों व सीमाओं से बाधित हुआ। इन सुधार-आंदोलनों में एक शहरी प्रवृत्ति भी थी, केवल आर्य समाज को छोड़कर, जिसका प्रभाव पिछड़ी जातियों के आंदोलनों पर व्यापक रूप से था। दूसरे सुधार-आंदोलनों का क्षेत्र उच्च जाति व वर्ग तक ही सीमित था। उदाहरण के लिए, बंगाल का ब्रह्म समाज ''भद्रलोक'' की समस्याओं से संबंधित था तो अलीगढ़ आंदोलन ऊँचे वर्ग के मुसलमानों की समस्याओं से। आम जनता साधारणतः इनसे अप्रभावित ही रही। सुधारकों की एक दूसरी सीमा ब्रिटिश राज्य व भारत के प्रति उनके दृष्टिकोण के प्रत्यक्ष बोध में थी। वे भ्रांतिपूर्ण ढंग से यह सोचते रहे कि ब्रिटिश शासन तो भगवान द्वारा नियोजित है और वे ही भारत को आधुनिकीकरण के मार्ग पर ले जाएंगे। चूंकि उनकी भारतीय समाज के आदर्श स्वरूप की संकल्पना उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रिटेन का प्रतिरूप थी, इसीलिए उन्हें लगा कि भारत को ब्रिटेन जैसा बनाने के लिए ब्रिटिश शासन जरूरी है। इन सुधारकों ने हालांकि भारतीय समाज के सामाजिक, धार्मिक स्वरूप को अच्छी तरह से समझ लिया था, किंतु इसके राजनैतिक स्वरूप को पहचानने में चूक गए जो कि अंग्रेजों द्वारा शोषण पर आधारित था।

बोध प्रश्न-2

1) भारत में धर्म और महिलाओं की स्थिति पर राममोहन राय के विचारों के बारे में विस्तार से बताइए।

....

....

....

2) उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों के प्रमुख रुझानों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

9.7 सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने द्विस्तरीय कार्य का बीड़ा उठाया। भारतीय समाज की आलोचना हुई। जाति-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-प्रथा, बाल-विवाह आदि संस्थाओं का कड़ा विरोध हुआ। अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़िवाद की निंदा हुई। इसके साथ ही भारतीय समाज के आधुनिकीकरण करने का प्रयास हुआ। तर्क, बुद्धि तथा सहिष्णुता के लिए जनमानस से आग्रह किया गया। सुधार-आंदोलनों की गतिविधियों का कार्यक्षेत्र केवल किसी एक धर्म तक ही सीमित न होकर पूरे समाज तक था। हालांकि उद्देश्य प्राप्ति में उन्होंने विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया और उनके बीच समय का अंतराल भी रहा, किंतु तात्कालिक परिप्रेक्ष्य और उद्देश्य में ध्यान देने योग्य एकता का परिचय उन्होंने दिया।

उन्नीसवीं सदी के सामाजिक पुनर्रचना के प्रयासों के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक बुराइयों का सम्यक बोध एक महत्वपूर्ण प्रस्थान-बिंदु था। महिलाओं की स्थिति, बाल विवाह, सती-प्रथा, बहु-विवाह, विधवापन की बाध्यता, जाति-प्रथा, अस्पृश्यता, मूर्ति-पूजा, बहुदेववाद, कर्मकांड, धर्माध्यक्षों का प्रभुत्व तथा समाज में व्याप्त अंधविश्वास इत्यादि पर न्यूनाधिक मात्रा में तीक्ष्ण बौद्धिक प्रहार किए गए।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 111 24-03-2021 11:47:21

वर्तमान बुराइयों के बोध के प्रयास से जुड़ा हुआ था समाज व्यवस्था के पुनर्जीवन का प्रयास। महिलाओं की स्थिति में सुधार, बाल-विवाह का उन्मूलन, एक-विवाह, विधवा-विवाह, जातिगत भेदभाव की समाप्ति, एकेश्वरवाद, आध्यात्मिक साधना, सामाजिक मतांधता एवं अंधविश्वासों का अंत सुधारकों के सामान्य उद्देश्य थे, यद्यपि उपरोक्त प्रत्येक व्यक्ति ने इनमें से प्रत्येक लक्ष्य को प्रोत्साहित नहीं किया। सन्निहित सरोकार था एक सुधरी हुई सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज की सर्वांगीण प्रगति।

9.8 शब्दावली

पुनर्जागरण : भूत को पुनर्जीवित करने की चेष्टा।

सती-प्रथा : विधवा को उसके मृत पति के साथ चिता पर जलाने की प्रथा।

बहु-देववाद : बहुत से देवी-देवताओं की पूजा में आस्था।

विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने का विधयेक : लड़कियों की शादी की उम्र 12 साल तक बढ़ाने के लिए पारित किया गया एक विधेयक।

एकेश्वरवाद : एक ही ईश्वर की अराधना।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) (क) × (ख) ✓ (ग) ✓ (घ) ✓

2) भाग 9.3 देखें।

बोध प्रश्न-2

1) उपभाग 9.4.1 देखें।

2) उपभाग 9.4.4 और 9.4.5 देखें।

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 112 24-03-2021 11:47:21